महाजन और उनका मार्ग

(महाजनों के गतः ५ वर्षों)

लेखक—विश्वात्मा

महाजन और उनका मार्ग

लेखक—

नैष्ठिक ब्रह्मचारी महात्मा

आनन्दस्वरूपजी

ॐ

प्रकाशक—

मरुधर प्रकाशन मन्दिर

जोधपुर

प्रथमवार,

सन् १६३६.

पुस्तक विक्रेता:—

व्यास ब्रदर्स

जोधपुर,

१००० | मूल्य ।)
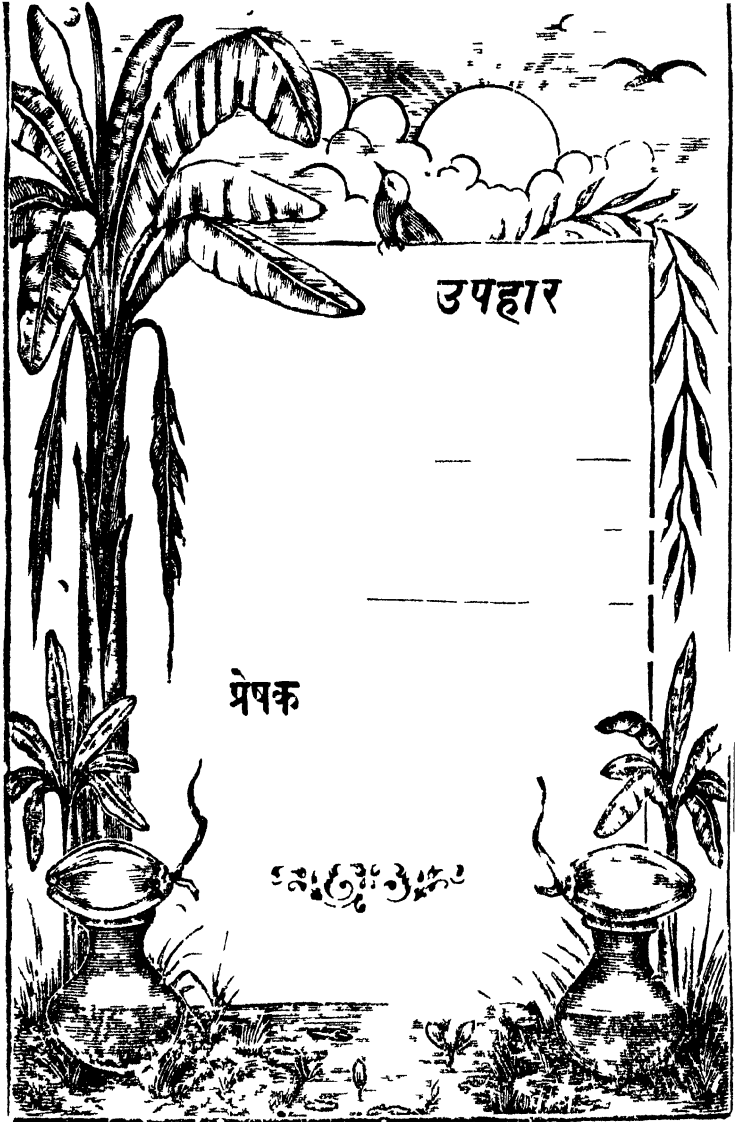
उपहार
प्रेषक
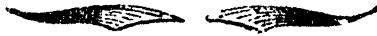
समर्पण

विद्या, तप से जो बड़े हैं,

और नीति विज्ञान से ।

करता समर्पण ॐ उनको,

पुस्तिका सम्मान से ॥

विश्वात्मा "ॐ"

प्रकाशक के दो शब्द

यक्ष ने एक बार धर्मराज युधिष्ठिर से प्रश्न किया था कि धर्म का मार्ग क्या है? महाराज युधिष्ठिर ने उत्तर दिया था कि जहाँ तर्क, श्रुति, स्मृति की पहुँच नहीं है; जिस मार्ग से महाजन पुरुष गये हैं वही धर्म का सत्य मार्ग है। इस उत्तर में यक्ष को बड़ा भारी संतोष हुआ। परन्तु यदि हमें आज यही उत्तर दिया जाय तो शायद हमतो यही कहेंगे कि इस सार तत्व स्वरूप उत्तर से हम कुछ नहीं समझ सकते। यक्ष तुरन्त समझ गया इसका कारण यही था कि यह धर्म के सार तत्व से अनभिज्ञ नहीं था। वास्तव में सर्व साधारण के लिये धर्म व महाजन शब्दों के तत्वों को समझ लेना मामूली बात नहीं है।

यही प्रसंग शिवदत्त स्मारक भवन में बैठे हुवे एक दिन चल पड़ा। उस समय ही महात्मा ॐ ने कृपा कर इस तत्व की व्याख्या की। फिर शनैः २ यह विचार प्रकट किया गया कि यदि इस पर एक निबंध प्रकाशित होवे तो जनताका कुछ उपकार हो। इसी उद्देश्य से ॐ ने यह निबन्ध लिखवाने की कृपा की

है। इस निबन्ध में धर्म और महाजन शब्दों का वास्तविक अर्थ, उनका वर्तमान काल में दुरुपयोग, इन पर पूर्व आचार्यों की व्याख्या और अरवाचीन काल में इनकी उपयोगिता आदि विषयों पर खुलासा तौर से विवेचना करते हुये इस विषय को स्पष्ट करने का उद्योग किया गया है। आशा है यह निबन्ध पाठकों को इस विषय में जानकारी बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगा।

'महाजन' शब्द पर महात्मा लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने अपने गीता रहस्य में बहुत कुछ विवेचना की है और इस निबन्ध में उस विवेचना से बहुत कुछ सहायता मिली है अतः लेखक महात्मा तिलक का इसमें बड़ाभारी आभार मानते हैं।

महाजन व धर्म शब्दों पर शास्त्रीय व सत्य रूप से विवेचना की दृष्टि से ही कुल बातें इसमें संकलित की हैं जिनमें व्यवहारिक बातें भी आजाना स्वाभाविक ही है। ऐसा करते वक्त इन शब्दों के सहारे जो अत्याचार व पाप हो रहे हैं उनका स्पष्टीकरण करना अत्यन्त आवश्यक था और आलोचना के समय जो वास्तविक बातें दृष्टिगोचर हुई हैं उन्हें निस्संकोच लिखना ही पड़ा है। परन्तु किसी की निन्दा या किसी के साथ द्वेष भाव की और दृष्टिकोण रखना लेखक का उद्देश्य नहीं रहा है। इसी लिये इसमें कोगई आलोचना कहीं २ कटु होते हुए भी हमें पूर्ण विश्वास है कि किसी को अखरेगी नहीं।

हम इस पुस्तक को प्रकाशित करने में अपना सौभाग्य समझते हैं। इस लिये नहीं कि हम ॐ के चेले हैं जैसा लोग प्रायः खयाल करते हैं अथवा कह देते हैं बल्कि इस लिये कि हमारे प्रकाशन मंदिर का उद्देश्य ही यथाशक्ति सरल, सुन्दर व उपयोगी साहित्य प्रकाशित करना है और इस कार्य में महात्मा ॐ की हमें पूरी सहायता है। वैसे हम चेले चेले किसी के नहीं हैं, फिर भी ॐ हमारे गुरु हैं ठीक उसी हद तक जो कि इस निबन्ध में उन्होंने निर्धारित की है। उस सीमा में तो ॐ क्या जितने भी सज्जन समावेश हो सके हैं वे सभी हमारे गुरु हैं और नहीं तब उनके निराकरण का उपाय भ स्वयं ॐ ने इसी निबंध में बतला दिया है।

हमारी यही मनोकामना है कि हमारे भाई इस निबंध को पढ़कर कुछ मनन करें और इस रुढ़ीवाद के नाते जो पापाचार व दुखदायी काण्ड हो रहे हैं उससे बचने का उपाय निकालें।

हमें पूरा विश्वास है हमारे बन्धुगण इस छोटी सी पुस्तिका का खूब प्रचार करेंगे।

गुरुपूर्णिमा
ता० ३-७-३६
शुक्रवार

निवेदक:—
व्यास सूर्यराज शर्मा,
बी. ए. विशारद
मंत्री:—
मरुधर प्रकाशन मन्दिर जोधपुर।

भूमिका

किसी गृहस्थी के लिए एक सन्यासी की पुस्तक के विषय में लिखना एक प्रकार से उसकी अनधिकार चेष्टा ही है। परन्तु उसकी इच्छा पूरी करना भी गृहस्थी का धर्म है। मेरी स्थिति भी कुछ कुछ ऐसी ही है।

धर्म क्या है ? उसका क्या स्वरूप है और क्या होना चाहिए, इस विषय में अनेक मत हैं और सदा से चलते चले आ रहे हैं। प्रत्येक युग में, सृष्टि के आदि से लेकर अबतक जितनी खींचातान इस शब्द के लिए हुई है वैसी किसी और के लिए नहीं। प्रत्येक युग-प्रवर्तक ने समय के अनुसार समाज की भलाई के लिए और आध्यात्मिक उन्नति की आवश्यकता के अनुसार धर्म शब्द की व्याख्या की है। इसि लिए चारों वेदों और स्मृतियों की प्रतिष्ठा हुई तथा धर्मराज युधिष्ठिर जैसों को भी "महाजनो येन गतः स पन्था:" से काम लेना पड़ा। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि धर्म की व्यापक व्याख्या और उसका व्यवहारिक रूप, समय की आवश्यकताओं के अनुसार ही हुआ करता है। उसमें मुख्य सिद्धान्त सदा एकसे रहते हैं केवल उनका प्रत्यक्षीकरण नए नए रूप धारण करता जाता है।

ॐ महाराज ने भी आजकल की आवश्यकता और स्थिति को देखते हुए इस विषय पर अपने विचार प्रगट किए हैं। उनके धर्म, महाजन आदि शब्दों की व्याख्या से कोई सहमत हो या न हो परन्तु सिद्धान्त रूप से इनमें जो तत्व है वह तो प्राय: सभी को माननीय होगा।

हमारे देश और समाज की वर्तमान दशा ऐसी है कि यदि शीघ्र ही हमने अपने को न संभाला तो रावण की तरह सोनेकी लङ्का का नाश करने का पाप हमारे सिर पर होगा। यदि हम अपने उत्तरदायित्व को समझलें और उसीके अनुसार काम करें तो हम अपने गत-गौरव को फिर प्राप्त कर सकते हैं। मुझे आशा नहीं विश्वास है कि ॐ महाराज की उपदेश वाणी का प्रभाव होगा और उनकी पुस्तक समाज का कल्याण करने में सहायक होगी।

सोमनाथ गुप्त
एम. ए.
हिन्दी लेक्चरार
जसवन्त कालेज, जोधपुर.

ता० २१-७-३५.

॥ ॐ ॥

मूल वाक्य

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नैको ऋषिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

महाभारत

ॐ धर्म के समझने में तर्क की अप्रतिष्ठा (अप्रमाणिकता) है क्योंकि तर्क बुद्धि की तीक्ष्णता का कार्य है जिसकी जितनी बुद्धि की तीव्रता होती है उतनी ही उसकी तर्क प्रबल होजाती है अतः तर्क अप्रतिष्ठित व व्यवस्था रहित है। ऐसे ही श्रुति (वेद) से भी धर्म का तत्व नहीं समझा जा सक्ता है क्योंकि उनके मत में भी भिन्नता विराजमान है। फिर, स्मृति शास्त्र का तो कहना ही क्या है वहाँ तो जितने ऋषि हैं उतनी ही वाणियें अपनी २ रट लगा रही हैं; कोई एक ऋषि तो है नहीं कि जिनका कथन प्रमाण स्वरूप माना जा सके। अतः धर्म का तत्व उनसे भी समझ में नहीं आ सक्ता है। धर्म का तत्व तो हृदय की गुहा में छिपा हुआ है। जिन महाजन—श्रेष्ठ गुरु पुरुषों ने अपने हृदय की आवाज

(वाणी) सुनी है उनका मार्ग ही धर्म तत्व का मार्ग है यही बात श्री भगवान् ने गीता ३–२१ में भी कहा है कि:-

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

कहा है कि जिस कर्म मार्ग से श्रेष्ठ (हृदयेश दर्शी) पुरुष आचरित हुए (गये) वर्तते हैं वही धर्म का प्रमाणिक मार्ग है उस मार्ग से ही प्रेय, श्रेय के उपासक अन्य पुरुषों को जाना चाहिये अन्यथा (अन्धेनैव नीयमानाः यथान्धः) अन्धे से लेगये हुए अन्धे वाली गति होगी ।

ॐ इस सबका भावार्थ यह है कि धर्म न तो तर्क में है न श्रुति स्मृति में है । धर्म तो उस हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म तन्त्री की झङ्कार में है जिसको हमारे हृदयेश सम्पादन दे रहे हैं । जो इस तन्त्री के शब्द के संकेत पर ही मरते और जीते हैं वही महाजन श्रेष्ठ धर्म तत्व, ईश्वरीय धारणा के ज्ञाता हैं उनका अनुकरण ही महाजनों का अनुकरण है ।

विश्वात्मा ॐ
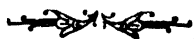
सार विमर्श

ॐ जिसके स्वार्थ का स्वरूप एवं गुण परमार्थ में बदल गया है वही सच्चा महाजन (श्रेष्ठ) गुरु वृद्ध है। वस्तुतः महाजन की कसौटी ही स्वार्थ नाश और परमार्थ की अमरता है, क्योंकि परमार्थ ही मानवी जीवन का सच्चा धर्म है। जिसके परमार्थ का तत्व स्वार्थ रूप श्वान के पेट में पच गया है वह मनुष्य नहीं अपितु एक मनुष्य देहधारी हिंसक पशु है। परमार्थ को स्वार्थ में हजम करना ही सबसे बड़ा अधर्म (पाप) है अतः महाजनों का परमार्थ ही सच्चा धर्म है और स्वार्थियों का स्वार्थ ही सबसे बड़ा अधर्म-पाप है यही इस निबन्ध का सार विमर्श है।

विश्वात्मा ॐ

: महाजन और उनका मार्ग :

❀ विषय प्रवेश ❀

ॐ भारतीय जीवन ने मनुष्य जीवन के पवित्रतम् तत्व को उस वैदिक काल में ही जान लिया था जब कि विश्व का मनुष्य जीवन पशुत्व से भी नीचे के गर्त में पड़ा हुआ था। इसका प्रमाण वैदिक मन्त्रों की वह प्रार्थना ही है जिसमें मनुष्य जीवन को ईश्वरमय बनाने के करुणा भरे शब्द समूह हैं जिसमें कहा गया है कि, "हे भगवान! मेरा बालकपन तुझ में मिले युवापन तेरा होजावे तैसे ही वृद्धापन भी तुझ में ही भस्मसात हो।" उदाहरण स्वरूप देखिये कि:—

त्र्यायुषम् जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् यद्देवेषुत्र्यायुषम् तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् ॥

साधक क्या कहता है-हे भगवान! जमदग्नि की तीनों आयु कश्यप की तीनों आयु और देवताओं की तीनों आयु मुझमें हो। अहा! कितनी पवित्र उच्च व आदर्श प्रार्थना है जिसमें मनुष्य की तीनों आयु के सदुपयोग (ईश्वरार्पण) करने का तीव्रतर वेदना टपक रही है, जो मनुष्य के अस्तित्व को ईश्वरार्पण करने के सिवाय और कोई अपना कर्त्तव्य ही नहीं समझती परन्तु दुःख और शोक से लिखना पड़ता है कि आज वही भारतवर्ष विशेष करके वही हिन्दु जाति या उसका वही ब्राह्मण समाज जिसने उस समय गुरुत्व का पद प्राप्त किया था, जिसके पूर्वजों को कभी पूर्वोक्त प्रार्थनाओं को अगोचर तत्व ईश्वर से पकड़ कर विश्व को यह बताने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था कि मनुष्य को मनुष्य बनाया गया है कि वह अपनी तीनों आयु को ईश्वर में मिलावे आज भारतवर्ष की वही ब्राह्मण जाति अपनी तीनों आयु का दुरुपयोग करने में विश्वभर से बाजी लगा रही है। उफ़! उसने अपने बचपन को मिट्टी में मिला दिया है। युवापन को पिशाच के हाथों में सौंप दिया है। अफ़सोस! और उसकी महाजन के पद पर पहुँचाने वाली वही वृद्धावस्था जो कभी जाति समाज व राष्ट्र की महान वृद्धि और प्रकाश का आदर्श

हुआ करती थी आज जाति समाज राष्ट्र को एक महान् अभिशाप का स्वरूप होकर लग रही हैं। बस यह तीनों आयु-अवस्थाओं का दुरुपयोग ही भारत के धर्म, जाति, समाज, राष्ट्र का घातक पाप है। यदि नवीन भारत को इस घातक पाप के गर्त से निकलना हो तो उसको सर्व प्रथम अपने महाजन शब्द का तत्व और उसकी परिभाषएँ समझ लेनी चाहिये क्योंकि आज यह (महाजनो येन गतः सः पन्थाः ही) हमारे पतन का सब से बड़ा साधन बना हुआ है। अतः इसका सार तत्व समझ लेना ही हमारे उत्थान की सर्व प्रथम कसौटी है। आइये पाठकवृन्द, अब हम महाजन शब्द के तत्व को देखें।

महाजन शब्द के पर्य्यायवाचक शब्द।

ॐ किसी भी वस्तु का तात्विक अर्थ समझने के लिये उस वस्तु के पर्य्यायवाचक शब्द और परिभाषा को समझना आवश्यक है क्योंकि इनके समझे बिना वह वस्तु असली स्वरूप में समझ में आ ही नहीं सकती। अतः पाठकों के हितार्थ यहाँ महाजन शब्द के पर्य्याय वाचक शब्द और उसकी परिभाषा दीजाती है और आशा है पाठक इन्हें ध्यान से पढ़ कर व समझ कर लाभ उठावेंगे।

ॐ वैसे तो महाजन शब्द के पर्य्यायवाचक शब्द बहुत हो सकते हैं परन्तु यहां तो पाठकों को ॐ वही पर्य्यायवाचक शब्द बतलावेगा जिनको विश्व के आधुनिक जीवन ने एक चट्टान के सदृश गले में मजबूती से बांध रक्खा है वे हैं:-महाजन, महात्मा, वृद्ध, गुरु, बड़े आदमी, पूर्वज।

'महाजन' शब्द का अर्थ।

ॐ महाजन शब्द का अर्थ (महाव यासुजनः महाजनः) मनुष्य में महान् पुरुष, महा पुरुष महात्मापुरुष, बड़ा आदमी होता है। जिसकी महानता सबको आनन्द, सुख, प्रेम, भक्ति, ज्ञान, उन्नति, धर्म, नीति देने वाली हो, जिसके सिद्धान्त प्राणिमात्र के लिये एकसा सुख पहुँचाने वाले हो, जो राग और द्वेष की दुर्गन्धि से रहित हो, जिसने अपने जीवन को सबमें और सबके जीवन को अपने में मिला लिया हो; जो सब के दुःखों को अपना दुःख और सबके सुखों को अपना सुख मानता हो वही सच्चा महाजन होता है।

'वृद्ध' शब्द का अर्थ।

ॐ महाजन का शब्द दूसरा पर्य्यायवाची शब्द है—वृद्ध, सीधा सादा अर्थ 'वृद्धि' 'पूर्णता' का सूचक है, जिस प्राणी में या जिस अवस्था में पूर्वोक्त महाजन शब्द के लक्षण पूर्णवृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं वे ही वृद्ध नाम से कहे जाया करते हैं अर्थात् जिस में बुद्धि, विद्या, नीति, धर्म, कर्म, प्रेम, शांति, विवेक, वैराग्य, सदाचार, शिष्टाचार व भक्ति सेवादि के तत्वों की वृद्धि महान् रूप से विद्यमान हों तथा पूर्णतया ईश्वरता में पहुँच गई हो वेही वृद्ध नाम से कहे जा सकते हैं।

'गुरुजन' शब्द का अर्थ।

ॐ महाजन शब्द का तीसरा पर्य्याय गुरु शब्द है जो बड़े ही महत्व का एवं तात्विक है। हिन्दू शास्त्र और हिन्दू भाव में जितना आदर इस शब्द ने पाया है उतना किसी अन्य शब्द को पाने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है। कहीं कहीं तो इस शब्द को ईश्वर कोटि से भी उच्च पद का बताया गया है। इसका कारण इस शब्द का वही दिव्य अर्थ ही है जो इस 'गु' और 'रु' शब्द से ही निकलता है। वह है 'गु' अन्धेरा और 'रु' प्रकाश। जो

अज्ञान के अन्धेरे को हटा कर ईश्वर के प्रकाश को दिखलाता है वही सच्चा गुरु, महाजन, वृद्ध कहा जाता है ।

तीनों शब्दों का समन्वय

ॐ प्रथम शब्द में 'महा' और 'जन' दो शब्द हैं जिनका अर्थ होता है महानता वाला जन, मनुष्य। दूसरे शब्द में भी दो ही पद हैं । एक 'वृद्ध' और दूसरा 'जन' जिसका अर्थ है 'बड़ा' हुआ 'मनुष्य'। तीसरे में तीन शब्द हैं एक 'गु' दूसरा 'रु' तीसरा 'जन'। इनका अर्थ हुआ अन्धकार को हटा कर ज्ञान (ईश्वर) के प्रकाश को दिखलाने की योग्यता वाला मनुष्य। इन सब का समन्वय अर्थ हुआ "जिस पुरुष ने अपनी महान पूर्णवृद्धि की है वही विश्व के अन्धकार को हटाने में समर्थ हो सकता है"। जो अन्धकार को हटाने में समर्थ हुआ करता है वही पुरुष उस धर्म के छिपे हुए तत्त्व को निकाल कर (जिसको तर्क, श्रुति, स्मृति और अनेकों ऋषि लोग भी नहीं जान सके हैं) जनता के सन्मुख रख कर धर्म के मार्ग को साफ सुथरा बना दिया करता है। इस मार्ग पर चलने का संकेत ही "महाजनो येन गतः स पन्थाः" में किया गया है। इस मार्ग पर चलकर ही मनुष्य अपने ध्येय-ईश्वरीयज्ञान-को प्राप्त किया करता है।

अब शङ्का यह होती है कि क्या इस महान्, वृद्ध, गुरु शब्द का किसी आयु विशेष से भी सम्बन्ध होता है ? इसका उत्तर विना किसी संकोच के सदा यही दिया गया है कि 'नहीं'। जिस अवस्था व आयु में पूर्वोक्त गुणों की महानता का मनुष्य में विकाश होता है उस ही अवस्था विशेष का नाम महाजन, वृद्ध, गुरु कहा जाता है। यही मत पूर्वकाल के ऋषियों को मान्य था। अतः पाठकों के हितार्थ इस सम्बन्ध में कुछ शास्त्रीय प्रमाण यहां दिये जाते हैं। देखिये वेदों में महाजन शब्द का अर्थ क्या ही अच्छा कहा है ?

१—वेद.

युवास्यात् साधु युवाऽध्यायकः आशिष्टो दृढिष्ठो बलिष्ठ तस्येयं पृथ्वी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् ॥ तै० उ० अठवाँ अनुवाद

अ० इस मन्त्र में युवक पुरुष ही साधु, महान, श्रेष्ठ; युवक ही अध्यापक, शिक्षक, दीक्षक; युवक ही नैराश्य असफलता, अकर्मण्यता को पराजित करने वाला; युवक ही दृढता, अटलता, कटिबद्धता का स्तम्भ स्वरूप और युवक ही बल, शक्ति, साहस, धैर्य का केन्द्र रूप होता है। ऐसे महापुरुष के लिये ही पृथ्वी सर्ववित्तों से पूर्ण होकर सदा तैय्यार रहती है।

ॐ उपरोक्त मन्त्र से यह स्पष्ट रूप से पता लगता है कि जो पुरुष युवावस्था में ही संयमी, दृढ़-प्रतीज्ञ, शक्तिशाली होता है वही सच्चा साधु महाजन श्रेष्ठ पुरुष कहलाया जाता है। उसके लिये सम्पूर्ण वसुन्धरा धन धान्य से पूर्ण हो जाया करती है। यदि सत्य एवं वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जावे तो उपरोक्त मन्त्र के विशेषण महानता के रत्न हैं जिनके बिना मनुष्य वैसे ही अन्धा होता है जैसे प्रकाश के बिना दीपक, सूर्य। अब अन्य शास्त्र भी देख लीजियेः—

२ शास्त्रीय कथा.

ॐ मनुस्मृति में एक कथा आई है कि एक अङ्गिरस नाम का बच्चा छोटी उम्र में ही महान् ज्ञानी, तत्वज्ञ हो गया था। अतः उससे सब बड़े बुड्ढे चाचा, मामा, पिता, बाबा आदि भी तत्वज्ञान पढ़ने लगे थे। एक दिन उस बच्चे ने पढ़ाते हुए अपने बड़ों से कहा कि "पुत्र का इति हो वाच ज्ञानेन परिग्रीहताम्" इस तत्ववेत्ता बालक के मुख से ऐसा सुनते ही सब बड़े बुड्ढे क्रोध से लाल होकर बोले कि इस लड़के को विद्या का उन्माद होगया है अतः इसको उचित दण्ड देकर सीधा करना चाहिये। उन लोगों

ने इसको सीधे मार्ग पर लाने के लिये देव सभा में मान हानि का दावा ठोक दिया। देव सभा से जो फैसला हुआ था उसकी नकल यह है कि:—

> नतेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।
> योवै युवाप्य धीयानस्तं न देवाः स्थविरं विदुः॥
>
> म० स्मृ० दूसरा अध्याय।

बाल सफेद हो जाने से ही कोई मनुष्य वृद्ध नहीं हो जाता, हम देवता लोग तो उसको ही वृद्ध मानते हैं जो युवक होकर भी ज्ञान से भरपूर है।

३ महाभारत आदि पर्व में भी कई प्रमाण हैं देखिये:—

१ नागराज वासुकि ने अपनी बहिन से कहा:—

> नयत्वं ब्रूहि वत्सं कुमारं वृद्ध सम्मतम्।
> ममाद्य त्वं सभृत्यस्य मोक्षार्थं वेद वित्तमम्॥

हे बहिन! वृद्धों के समान बुद्धिमान, वेदज्ञ, अपने प्रिय कुमार (आस्तीक) को सहकुटुम्ब हमारे छुड़ाने के लिये प्रेरणा करो।

२ जनमेजय आस्तीक के वचन सुन कर बोला:—

बालोप्ययं स्थविर इवाघ भषते, नायं बाल: स्थविरोय मतो मे ।
इच्छाम्महं वरमस्मै प्रदातुं, तन्मे विप्रा: संविदध्यं यथावत् ॥

यद्यपि यह अभी बालक है, परन्तु वृद्ध की तरह संभाषण करता है । मेरी सम्मति में इसे बच्चा मानना ही नहीं चाहिये—यह तो वृद्ध ही है । मैं इसको वरदान देना चाहता हूँ इसके लिये आप मुझे उचित कर्त्तव्य बताइये ।

३ अष्टक राजा ययाती को कहता है:—

अवादीस्त्वं वयसा य: प्रवृद्ध: स वै राजाभ्यधिक: कथ्यते च ।
या विद्यया तपसा संप्रवृद्ध: स एव पूज्यो भवति द्विजानाम् ॥

हे राजन् ! जो तूने यह कहा कि जो आयु में बड़ा होता है, वही द्विजों में बड़ा है यह ठीक नहीं है कारण कि द्विजों में तो जो विद्या और तप में बड़ा है वही पूज्य हो सकता है ।

४ जरत्कारु को उसके पितरों ने कहा:—

वृद्धो भवान् ब्रह्मचारी यो नस्त्रातु मिहेच्छसि ।

आप वृद्ध और ब्रह्मचारी हैं एवं हमारा उद्धार भी करना चाहते हैं ।

उपरोक्त श्लोकों से मालूम होजाता है कि दूसरों का उद्धार करने वाला, सदाचार युक्त, चरित्रवान, वेदविद्या तथा तप से युक्त, सत्य धर्म की तारतम्यता के तत्व को समझनेवाला पुरुष, बालक होने पर भी बड़ों का पूज्य वृद्ध, महाजन, मान्य हो जाया करता है। यदि ऐसा नहीं होता तो जनमेजय की बात यज्ञ के ब्रह्मादि सदस्य और दुहित्र की बात, ययाती कभी नहीं मानते होते।

५ और भी सुनिये:—

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा, वृद्धा न ते येन वदन्ति धर्मः।
धर्मः स नो यत्र न सत्यमस्ति, सत्यं न तद्यच्छलमभ्युपेति ॥

इस श्लोक में सभा, वृद्ध, धर्म और सत्य का स्वरूप बताया गया है अर्थात् जो छल कपट रहित सत्य धर्म को बता सकते हैं उन धर्म-वृद्ध पुरुषों के सम्मेलन का नाम ही सभा होता है।

ॐ कहां तक बतावें हिन्दु धर्म-शास्त्र ऐसे अनेक प्रमाणों से भरे पड़े हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि वृद्ध शब्द का अर्थ व भाव आयु में बड़ा होने से नहीं है अपितु ज्ञान व तप में बड़ा होने से है। कहा भी है:—

गुणाः पूजास्थानं भवति न च लिगं न च वयः ।

अर्थात् पूजाके पात्र वे सब हैं जिनमें सद्गुण विद्यमान हैं इसमें लिंग भेद अथवा आयु भेद की कोई बाधा नहीं है।

एक पाश्चात्य कवि की भी कितनी सार युक्त उक्ति है:—

The beard was never the measure for wisdom.

अर्थात् ज्ञान का तोल डाढ़ी से कभी नहीं हुआ ।

यही बात भगवान् बुद्धदेव को भी मान्य थी। देखिये वह कहते हैं कि:—

नयते न थेरो होति, ये नस्स पलितं शिरो ।
परिपक्को वयो तस्स, मोघ जिरुनोति वुच्चति ॥
(धर्मपद २६०)

वृद्ध अवस्था का सम्बन्ध आयु से नहीं अपितु ज्ञान विद्या, धर्म, नीति, अहिंसादि से है । आगे फिर कहा है कि जो आयु से ही वृद्ध होजाता है उसका जीने से मरना ही भला है । फिर 'चुल्लवाग' ग्रन्थ ६-१३-१ में कहा है कि चाहे धर्म के बताने वाला भिक्षु नया (जवान, बच्चा) क्यों न हो फिर भी वह ऊँचे आसन पर बैठकर आयुवृद्ध और प्रथम दीक्षित भिक्षुओं के उपदेश करे ।

इस सिद्धान्त को पुष्ट करने वाली कथाएँ हमारे वेद उपनिषदों आदि में भी बहुत मिलती है। जैसे ऋग्वेद संहिता की मात्र ब्रह्मवादिनी स्त्रियों और ब्रह्मवादी पुरुषों की कथाएँ वैदिक उपनिषदों में नचिकेता, श्वेतकेतु आदि बच्चों के इतिहास जिनको अपने बड़े बुद्धों को धर्म का तत्व बताने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

भारत का कौन विद्वान नहीं जानता कि ५ वर्ष के बच्चे नचिकेता ने धार्मिक तत्व के महान् धुरन्धर विद्वान तथा धर्म के शासक 'धर्मराज' को धार्मिक चर्चा में मूक बनाकर उसने उनसे अपने इच्छित वरदान को प्राप्त किया था।

देखो भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने बड़े २ विद्वान और वृद्धों के बैठे हुए भी राजसूय यज्ञ में जब अग्रपूजा का अधिकार प्राप्त किया था उस समय में उनकी अवस्था क्या थी? हाँ! तो उसी नन्द के सलौने ने इन्द्र के मुह में से इन्द्रपूजा का ग्रास निकाल कर गोवर्धन के मुह में डाल कर रूढ़ीवाद की कमर किस अवस्था में तोड़ी थी?

बालक अष्टावक्र ने जनक जैसे विदेह का गुरुत्व प्राप्त करके हजारों विद्वानों पर अपने तत्वज्ञान की धाक किस आयु में जमाई थी?

सुकदेव, सनक, सनन्दन आदि को भारत का कौन विद्वान नहीं जानता? बुद्धदेव कितनी आयु में बुद्ध हुए थे? आदि श्री शङ्कराचार्य ने कितनी आयु में जगद्गुरुत्व प्राप्त किया था? गोस्वामी तुलसीदासजी के भक्ति का चपेटा किस उमर में लगा था? बङ्गाल के प्रेमावतार प्रभु चैतन्य किस उमर के थे? स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने 'परमहंस रत्न' किस आयु में पिया था? तत्व रसिक ज्ञानेश्वर ने हजारों बुड्ढों के कानों की अज्ञानरूपी मैल निकाल कर गीता पर 'ज्ञानेश्वरी' नामक मनोरम टीका किस आयु में लिखी थी? समर्थ स्वामी श्रीरामदासजी ने शिवाजी में वीरत्व का मन्त्र फूँक कर कितनी आयु में उन्हें जागृत किया था? सिक्खों के गुरु नानक आदि ने पञ्जाब की आत्मा में सुषुप्त धर्म को किस आयु में जागृत किया था? आधुनिक भारत के बोधक स्वामी दयानन्द किस आयु के थे? पाश्चात्य जगत की आत्मा में आध्यात्मिक स्फूर्तिक मन्त्र प्रदाता स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ परमहंस (राम बादशाह) किस आयु के थे? ध्रुव, प्रह्लाद ने भगवान को कितनी आयु में प्राप्त किया था? गुरु गोविन्दसिंह के कुमार और हकीकतराय कितनी अवस्था के थे? कहां तक कहें हिन्दू शास्त्र और धर्म

ऐसे ही महाजनों से भरा पड़ा है जिसमें आयु को किसी भी समय में महानता का द्योतक नहीं माना गया है। उसके महाजन, वृद्ध, गुरु शब्द का सम्बन्ध सदा ही ईश्वरीय ज्ञान की पूर्ण वृद्धि, उसका प्रकाश तथा परोपकार के तत्व से रहा है।

परन्तु पाठकों को यहां यह न समझ लेना चाहिये कि ऐसे महाजनों वृद्धों तथा गुरुओं का आदर हिन्दु धर्म ही ने किया हो। नहीं, नहीं, ऐसे महान् ज्ञान से पूर्ण प्रकाश युक्त अल्पायु पुरुषों को सभी धर्मों में महाजन वृद्ध तथा गुरु पद प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हुआ है। मुसलमान धर्म के प्रवर्तक मुहम्मद ने कितनी आयु में 'कुरानशरीफ' की रचना कर डाली थी? ईसा मसीह ने ईसाई धर्म की नींव किस अवस्था में डाली थी? इस प्रकार किसी भी धर्म के आदि प्रवर्तक को खोज निकालिये वह आपको ईश्वरीय ज्ञान की पूर्ण वृद्धि के प्रकाश से ही बड़ा मिलेगा न कि मृत्यु के मुख में पहुँचाने वाली आयु से। आज के इस गये बीते समय में भी इस सिद्धान्त के नाम पर एक आयु वृद्ध ब्राह्मण अपने से छोटी उम्र के दण्डी-स्वामी पुत्र को झुककर 'नमो नारायण' कहता हुआ मिलता है। इसी सिद्धान्त के

आधार पर एक ६० वर्ष का बुड्ढा वैष्णव सम्प्रदाय के छोटे से गोसांई बालक को बिना किसी संकोच के साष्टाङ्ग दण्डवत करता मिलता है। इसी सिद्धान्त की गोदी में बैठ कर ही तो आज हजारों नहीं अपितु लाखों साधु वेष धारी धूर्त अपनी छोटीसी आयु में ही हिमालय की बर्फ के सदृश्य सफेद डाढी से अपने पैरों का मार्जन कराते हुए धर्मान्ध भारतियों के धन से गुलछर्रे उड़ा रहे हैं।

अच्छा तो प्रिय ॐ स्वरूप पाठक एवं पाठिकाओ! इस सबका अर्थ यह नहीं है कि आयु वृद्ध पुरुषों में महान ज्ञान की पूर्णता का प्रकाश होता ही नहीं है। नहीं अपितु इसका अर्थ यह है कि महाजन, वृद्ध, गुरु, शब्द का सम्बन्ध किसी आयु विशेष से न होकर आत्म तत्व के पूर्ण प्रकाश से ही है। उदाहरण स्वरूप इस समय आपके पास दो पदार्थ हैं। एक आत्मा दूसरा शरीर। प्रथम आत्मा पदार्थ तो इतना विस्तृत व्यापक है कि जिससे विश्व का कोई पदार्थ खाली नहीं रह सकता है अर्थात् वह जड़ में जड़ और चैतन्य में चैतन्य तथा विष में विष और अमृत में अमृत जैसा होकर रहता है या यों कहो कि "सर्वस्य तस्पृत्वा त्यतिष्टदशांगुलम्" (यजु०) वह सब विश्व को अपने में लपेट कर भी दश अंगुल

बाकी रह जाता है । इस आत्मा की पूर्ण वृद्धि के प्रकाश वाले पुरुष का नाम ही महाजन, वृद्ध, गुरु होता है। यह शरीर वाला होकर भी शरीर के आवरण (पर्दे) बंधन, अंतराय से रहित होता है। दूसरा पदार्थ आपके पास शरीर है वह इतना छोटा है जो ५–६ फुट की परिधी में ही समाप्त होजाता है। इस परिधी में बंधे हुए जीवन का नाम ही 'जन' है। यह पशु पक्षी जीव जन्तु और मनुष्य में बिल्कुल बराबर ही होता है क्योंकि इतने ही में तो ये सभी जन्मते और मरते हैं इस बात को समझ कर ही तो किसी महा पुरुष ने कहा है कि—
"जब आवेगा अन्त जैसा मर गया गदहा तैसा मर गया सन्त"—शरीर दृष्टि से तो गधे और सन्त की मृत्यु बराबर ही होती है। शरीर की परिधि से पार होकर मरना ही महाजन और जन का भेद होता है। जो अपने शरीर में ही मरजाता है वह जड़ जैसा जीवन होता है, जो कुटुम्ब के शरीर में मरता है वह पशु जैसा जीवन होता है। जो न्याति (जाति) के शरीर में मरता है वह बन्दर जैसा मनुष्य होता है, जो समाज के शरीर में मरता है वही साधारण मनुष्य कहा जाता है, जो राष्ट्र, 'देश' के शरीर में मरा करता है वह मनुष्य होता है और जो विश्व के

शरीर मात्र में व्यापक होकर मरता है वही महाजन वृद्ध गुरु के नाम से शोभित होता है जो इस भौतिक देह से परे होकर मरता है वही लीलामय अवतार ईश्वर हुआ करता है। जो इस लीलामय भाव को भी मिटा कर मरता है वही पुरुष की पराकाष्ठा परागति ब्राह्मी स्थिति कही जाती है। (सा काष्ठा सा परा गतिः) यही मनुष्य के मनुष्यत्व का विकाश है। इसको शास्त्रों में आत्म विकाश कहा गया है। इस आत्म विकाश में विकसित हुआ मनुष्य ही महाजन, वृद्ध, गुरु, श्रेष्ठ कहाया करता है। जिस आयु में मनुष्य अपने शरीर के दायरे को तोड़ कर आत्मा के दायरे मे प्रवेश कर जाया करता है उसी समय वह महाजन, वृद्ध, गुरु पद पा लेता है।

सच बात तो यह है कि शरीर में सिकुड़े हुए मनुष्य का नाम जन और आत्म ज्ञान में विकसित मनुष्य का नाम ही महाजन, वृद्ध गुरु है, चाहे फिर आयु कुछ भी क्यों न हो। ऐसे ही महाजनों के पद चिन्हों पर चलने से मनुष्यों को धर्म का तत्व मिला करता है, क्योंकि वे धर्म के उस तत्व में जा पहुँचते हैं जो समस्त धर्मों का उद्गम और लय स्थान है।

माहजन और धर्म ।

ॐ महाजन और धर्म का इतना ही अभेद्य सम्बन्ध है जितना कि जीवन और प्राण प्रकाश और सूर्य का होता है। जैसे प्राण के बिना जीवन और प्रकाश के बिना सूर्य का रहना निर्मूल है तैसे ही धर्म के बिना महाजन का रहना भी मिथ्या है। जैसे प्राण और जीवन सूर्य और प्रकाश में अभेद्य संबंध है तैसे ही महाजन और धर्म और धर्म और महाजन का अभेद्य संबन्ध है या यों कह दो कि महाजन का नाम धर्म और धर्म का नाम महाजन है। जो धर्म और महाजन को दो अर्थों में लेते है वह न तो धर्म को ही जानते हैं और न महाजन को ही समझते हैं। सिद्धान्त से महाजन के बिना धर्म और धर्म के बिना महाजन रह ही नहीं सकते हैं तभी तो धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा है कि 'धर्म की मृत्यु ही धर्मात्मा की मृत्यु और धर्म की रचा ही धर्मात्मा की रचा (जीवन) है"। जैसे गंगाजल की बहनेवाली धारा का नाम ही गंगा होता है तैसे ही महाजन की जीवनचर्या का नाम ही धर्म है, जैसे गंगाजल के सिवाय गङ्गा कोई वस्तु नहीं होती है तैसे ही धर्म के सिवाय महाजन भी कोई वस्तु विशेष नहीं होता है। वस्तुतः ऐसे महाजनों के

शरीर में शरीरपन ही नहीं रह कर शरीर का आवेश मात्र ही रहा करता है। वह व्यक्ति चेतन से नहीं अपितु समष्टि चेतन से ही जिया और क्रिया करता है। व्यक्ति चेतन का नाम ही अधर्म और समष्टि चेतन का नाम ही धर्म है। या यों कहो कि व्यक्ति चेतन में जीना ही अधर्म और समष्टि चेतन में जीना ही धर्म कहा जाता है। यही महाजन और धर्म का तात्विक मिश्रित एवं स्वरुप है। इस महाजन का मार्ग ही धर्म का मार्ग कहा जाता है। इस मार्ग पर चलना ही धर्म के मार्ग पर चलना है।

धर्म का स्वरूप।

"यत अभ्युदय निश्रा ससिद्धी सद्धर्मः"

ॐ इस सूत्र में धर्म्म के तीन तत्वों का स्वरूप कहा गया है। एक मूल धर्म्म दूसरा अभ्युदय तथा तीसरा निश्रेयश यहां धर्म्म का अर्थ तो धारणा (ईश्वर रूप सूर्यही) है और अभ्युदय एवं निश्रेयश का अर्थ उसकी रश्मियें या नियम है जो पुरुष उसकी किरणों या नियमों की माया मे आजाया करता है वही बड़ा आदमी होकर मुक्त ईश्वर में समाया हुआ रहा करता है। इस सबका भावार्थ यह हुआ कि ईश्वरीय नियमों की किरणों से शुद्ध हुआ

पुरुष ही यहां की उन्नति (बड़प्पन) प्राप्त करके ईश्वर में समाया करता है। यही धर्म्म का रहस्यमय स्वरूप है परन्तु स्मरण रहे धर्म्म सदा ही एक रस रहने वाला अपरिवर्तन शील तत्व है तो नियम परिवर्तन शील वस्तु है।

धर्म

ॐ धर्म का तात्विक स्वरूप समस्त धर्मों में एक एवं आपरिवर्तन शील तत्व है। उसका तात्विक स्वरूप मात्र धर्मों में एक और नाम अनेक हैं। उसके स्वरूप को कोई भी सम्प्रदाय नहीं बदल सकती है क्योंकि वह अजर अमर अविनाशी तत्व है जिसका बदला जाना [illegible] से भी दुस्तर है। धर्म को बदल कर कोई भी [illegible] अपना अस्तित्वही नहीं रख सकती है क्योंकि धर्म [illegible] का अर्थ ही वह धारण शक्ति है जिसके बदल जाने [illegible] का अस्तित्व ही बदल जाया करता है बदल [illegible] जाता अपितु वह नष्ट ही हो जाता है। धर्म ईश्वर का [illegible] साररस (स्टील) का नाम है जो विश्व के मात्र पर[illegible] को मर्यादित रूप से जोड़ कर धारण कर रहा है। [illegible] यही धारणा है जो आकाश का अवकाश, वायु [illegible] सञ्चार, अग्नि का तेज और जल का द्राव पृथ्वी की

स्थिरता है। इस अजर अमर धारणा का नाम ही ब्रह्म, ईश्वर, गाड (God) ज़ायोम्त अल्लाहादि है। इस तत्व के लिए तो भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि—हे अर्जुन! तू सब धर्म (सम्प्रदायों) को त्याग कर मुझ एक की शरण में आ। तू सोच मत कर, मैं तुझे सब पापों से छुड़ाकर अवश्य मोक्ष प्रदान करूंगा। यही हिन्दु सभ्यता के रहस्य का तात्विक स्वरूप है जिसको उपरोक्त सूत्र में निश्रेयस, और श्रुति में श्रेय तथा गीता में मोक्ष-धर्म कहा है। इस धर्म से ही आचार की उत्पत्ति हुआ करती है। जिसके उत्पन्न होते ही अनाचार, दुराचार आदि वैसे ही नाश हो जाते हैं जैसे प्रकाश के आगेसे अन्धकार होजाया करता है। इस धारणा के तत्व को धारण करने से ही मनुष्य धर्मात्मा, धर्मयुक्त, धर्मवाला हुआ करता है।

धर्म के नियम या 'रिलीजन'

ॐ—धर्म का दूसरा स्वरूप धर्म के नियम हैं। वे नियम भी दो तरह के हैं, एक सार्वभौम व्यापक और अपरिवर्तनशील, दूसरे अव्यापक और बदले जाने वाले।

अपरिवर्तनशील धर्म के नियमः—

ॐ—धर्म के नहीं बदले जाने वाले नियम वही हो सकते हैं जो सब धर्मावलम्बियों को समान सुख देने वाले हों, जिनमें विषमता का अभाव और समता का सार-तत्व भरा हुआ हो या यूँ कहो कि जिनको छोड़ देने से मात्र धर्म हानिप्रद एवम् अधर्म हो जाते हों वे नियम ये दस हैं:—

धृति क्षमा दमो स्तेय शौचमिन्द्रय निग्रह।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥

अर्थात् धृति = धैर्य। धारणा, क्षमा = दण्ड देने योग्य अपराधियों को दण्ड देने की ताकत रहते हुए भी क्षमा करना। दम = मनोविकारों का निग्रह। अस्तेय = चोरी का त्याग। शौच = शरीर शुद्धि और आत्म शुद्धि। इन्द्रिय निग्रह = चक्षु आदि बाह्य इन्द्रियों का दमन। धी = बुद्धि अच्छे और बुरे पदार्थों का निश्चित बोध कराने वाले निर्मल तत्व का पाजाना। विद्या = लौकिक और पारलौकिक बोध दायिनी विद्या। सत्य = त्रिकालाबाध्य तत्व का ज्ञान और व्यवहारिक सत्य बोलने की निष्ठा में तत्पर होना। अक्रोध = क्रोध का

त्याग । इन दश नियमों का मनुष्य में एक साथ होना ही धर्म का लक्षण है ।

ॐ—यह दशों नियम ईश्वर प्राप्ति के लिये और सभ्यता की दृष्टि से कितने महत्व के हैं इसको कोई भी विद्वान् समझ सकता है । तैसे ही यह नियम धार्मिक, नैतिक, वैज्ञानिक दृष्टि से भी मनुष्य के लिये उतना ही महत्व रखते हैं जितना की जीवन के लिये प्राण का होता है । ओम् के अनुभव में तो इन दश नियमों के सङ्गठन का नाम ही मनुष्य है । सिद्धांतिक दृष्टि से इनका खोदेना ही मनुष्य जीवन का खोदेना है और इनका सङ्गठन ही मनुष्य जीवन का पाजाना है ।

धर्म के परिवर्तन शील नियमः-

ॐ—धर्म के वही नियम परिवर्तनशील हुवा करते हैं जिनका सम्बन्ध आत्मा, हृदय, मन, बुद्धि, आदि अन्तरीय तत्वों से न हो कर शरीर की पोशाक के सदृश बाहिर के उपचारों तक में समाप्त हो जाया करते हैं । उदाहरणार्थ जैसे शैव, वैष्णव, आदि की पोशाक का भेद उसके रङ्ग आदि कों का भेद, तिलक छापादिकों का भेद, पूजा के उपचारों का भेद, बलिदान एवम् भेंट

आदिकों का भेद, नमस्कार बोल चाल आदि का भेद, शैव, वैष्णव, जैन, बौद्ध, सिक्ख आदिकों में भेद फिर शैव, शैवों में भेद, वैष्णव वैष्णवों में भेद, जैन जैनों में भेद, बुद्ध बुद्धों में भेद, तथा हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी, आदिकों में भेद बताने वाले मात्र धर्म के नियम समय पर वैसे ही बदले जा सकते हैं जैसे सरदी के वस्त्र गरमी में और गरमी के वस्त्र सरदी में बदले जाया करते हैं। इसी सिद्धान्त को लेकर तो शास्त्रकारों ने कहा है कि सतयुग में धर्म का स्वरूप और था और त्रेता में कुछ और तैसे ही द्वापर और कलयुग के धर्म में भी भिन्नता है।

ॐ के विचार में तो ये नियम पूर्वोक्त धृति आदि धर्मों के संरक्षकों के सङ्गठन का एक फौजी स्वरूप था जिनके शैव वैष्णव आदि चिन्ह (Mark) थे जैसे कि आजकल शासन में फौजी नं० १ और फौजी नं० २ आदि हुआ करते हैं।

अथवा ये चिन्ह आपस में लड़ने के लिये नहीं, अपितु अपने शासन और शासक को सङ्गठित एवम् मर्यादित रूप में कायम रखने के लिये ही हैं। इनके बाह्य चिन्ह शैव आदि इनके अध्यात्मिक जीवन का तत्व

बताने के लिये है, जैसे कि शैव को आते देखकर वैष्णव और वैष्णव को देखकर शैव ये समझते थे कि हम एक ही वस्तु के तत्व के उपासक दो दो चिन्ह स्वरूप हैं। बस इतना ही इन बहिर्चिन्हों का धार्मिक तत्व से सम्बन्ध था। जब तक ये इस सम्बन्ध को कायम रखने में समर्थ रहें तब तक इन संकेतों का रहना आवश्यक है जब ये आपस में एक एक के शत्रु का आसन ग्रहण कर लेवें तब इनका बदल देना या बिल्कुल त्याग देना ही धर्म कहा जाता है क्योंकि ऐसे हत्यारे कर्म को कोई भी बुद्धिमान पुरुष धर्म नहीं कह सकता है। देखिये शास्त्र में ऐसे धर्म को धर्म न कहकर अधर्म या कुधर्म कहा है।:—

धर्मो यो बाधते धर्मो न सद्धर्मः कुधर्मतत्।
अविरोधात् यो धर्मो सधर्मो सत्यविक्रमाः ॥महाभारत॥

कि हे सत्यविक्रम (सत्य की खोज करने वाला श्रेष्ठ) जो दूसरे धर्म का विरोध नहीं करता है वही सच्चा धर्म होता है और जो दूसरे धर्म का विरोध किया करता है वह धर्म नहीं बल्कि कुधर्म होता है। विश्व के इतिहास को देखने से पता लग जाता है कि जितनी हत्याएँ इस धर्म के नाम पर हुई हैं उतनी सब विश्व के चोरी डाके, हत्याकाण्ड, युद्ध, गुण्डापन आदि सब को मिला कर भी

अभी तक नहीं हुई हैं, यही बात झूठ पाखण्ड, ज्ञान, ढोंग, अनाचार, दुराचार, व्यभिचार आदि के लिये भी कही जा सकती है। वर्तमान समय में भी जितने पाप, पाखण्ड, ढोंग, धर्म के नाम पर हो रहे हैं उन की गणना करने में एक बड़ी पुस्तक तैयार की जासकती है। अपने हिन्दू धर्म को ही ले लीजिये। क्या धर्म के नाम पर बकरे भैंसे, मुर्गे, मनुष्य तक को बलिदान नहीं किया जा रहा है? क्या धर्म के नाम पर व्यभिचार, दुराचार, पखण्ड का साम्राज्य, भारतवर्ष एवं हिन्दू जाति में अपना आसन नही जमा रहे हैं? क्या हमारी एक सम्प्रदाय दूसरी सम्प्रदाय को हत्यारी, मूर्ख, पाखण्डो, समझ घृणा की दृष्टि से नहीं देखती? क्या हिन्दू मुसलमानों में दैनिक रुप में होने वाला रक्तपात धर्म के नाम पर नहीं हो रहा है? क्या हिन्दूओं का ईसाइयों द्वारा धूर्तता पूर्ण अपहरण धर्म के नाम पर नहीं हो रहा है? अस्तु चाहे यह वहिरङ्ग धर्म अपने रचना काल में कुछ उपयोगी रहे होंगे और उस उपयोगिता के कारण ही इनको कायम भी किया गया होगा परन्तु वर्तमान में ये धर्म भारतवर्ष के राष्ट्र धर्म, समाज धर्म, जाति एवं परमार्थ धर्म के लिये पुराने विषैले कीड़े का काम कर रहे हैं। उदाहरण स्वरूप हमारी देवी के नाम पर होने वाला बलीदान ही ले लीजिये

जिसके नाम पर प्रति दिन हजारों जीवों के प्राण प्रत्यक्ष रूप में लिये जा रहे हैं। देवी को किसी समय असुरों के खून पीने की आवश्यकता थी और फिर कभी अवसर आने पर हो भी सकती है परन्तु जगदम्बा ने पशुओं ही का वह भी अबोध व शक्ति हीन बकरों ही का रक्त पीया हो ऐसा समझ में नहीं आसकता। केवल इसी लिये कि किसी असुर ने संग्राम में किसी विशेष पशु का रूप धारण कर लिया इस लिये वह पशु सदा बलि के उपयुक्त है ऐसा समझना कोई समझदारी नहीं। हाँ, बलि के रूप में देवी को पूर्व सिद्धान्त पर बकरा न देकर दूध पिलाने से धर्म का महत्व घटना नहीं अपितु बढ़ेगा ही। ऐसे ही मुसलिम धर्म को भी ले लीजिये। चाहे उसको आरम्भ काल में बकरे, गाय आदि की कुरबानी की आवश्यकता रही हो; परन्तु वर्तमान में इन बुराइयों को निकाल देने से मुसलमान धर्म की इज्जत घटेगी नहीं अपितु सहस्त्र गुण रूप में बढ़ जावेगी। जिससे राष्ट्र, देश, समाज और धर्मों का मुख उज्ज्वल होकर मनुष्य में मनुष्य की प्रेम ज्योति का प्रकाश खिल उठेगा। इस प्रकार अनेकों बुराइयों मनुष्य समाज में धर्म के नाम पर घर कर गई हैं। अतः इनका बदलना पाप, अधर्म नहीं अपितु महान धर्म है परन्तु भारत

का दुर्भाग्य इस रूढ़िवाद के सड़े हुए मुर्दें को सहज में कब छोड़ने वाला है।

ॐ के विचार में भारत-धर्म के, राष्ट्र-धर्म के, नीति धर्म के ज्ञाताओं को सर्व प्रथम इन विषैले धर्म के नियमों को शीघ्रातिशीघ्र नाश कर देना चाहिये ताकि मनुष्य मात्र को धर्मके नाम पर होने वाले अकृत्य देखने ही को न मिले। जो पुरुष इन बुराइयों को मार भगा, नाश कर पूर्वोक्त सत्य धर्म की स्थापना करने में जितना अधिक भाग लेगा वह उतना ही इस जमाने का महाजन, वृद्ध, गुरु, श्रेष्ठ कहलाने का अधिकारी, धर्म, ईश्वर तथा सत्य के घर में होगा। और यदि उसका ध्येय सत्य है तो कोई कारण नहीं कि इसे सफलता न मिले। धीरे २ परिवर्तन होगा और निश्चय होगा और जो कार्य सत्य की नींव पर आरम्भ होगा उसका पूर्ण रूपेण फलीभूत होना निश्चय ही है।

महाजन शब्द का दुरुपयोग

ॐ महाजन शब्द का अर्थ पूर्व काल में भी बड़ा आदमी ही था और आज भी बड़ा आदमी ही है, परन्तु पूर्व काल का बड़ा आदमी धर्म-प्रसूत था जिसको पाठक

ऊपर देख चुके हैं। आजका बड़ा आदमी लक्ष्मी-प्रसूत है जिसका पूर्ण रूप में दिखाया जाना इस छोटी सी लेखनी की शक्ति से परे की बात है, क्योंकि लक्ष्मी नाम उस बर्फी का है जो गरीबों की रगों के चूसे हुए रक्त से जमा कर तैयार की गई है। इस लक्ष्मी-प्रसूत पुरुष का नाम ही आधुनिक महाजन कहा जाता है। जैसे माता से जन्म ले कर बच्चा माता के हृदय का दूध पीकर ही पला करता है वैसे ये महाजन भी गरीबों के रक्त से बन कर गरीबों के रक्त को पीकर के ही प्रवर्धित होते हैं। यही महाजन शब्द का दुरुपयोग है।

ॐ आधुनिक महाजन, निश्चय रूप से दुराचार, अत्याचार, अधर्म, अनीति, अन्याय का बना हुआ मनुष्यस्वरूप पुतला है; गरीबों के जीवन के लिये कृत्रिम मृत्यु या हिंसक जन्तु है। आधुनिक समय में वही सच्चा महाजन है जो रुपये के दांतों से दूसरों का मांस नोंच २ कर खाना जानता हो; व्यभिचार कर सकता हो; जो अपनी कुटिलता की जोंक के प्रभाव से दूसरों के निर्दोष रक्त का चूसना जानता हो और जो असत्य व कपट का भयंकर अधुर मूर्ति बना हुआ हो। इस पापकी कालिमा का प्रसिद्ध नाम पूंजीपति है। यही समतावाद का शत्रु और विषमवाद

का जीवन है। अपने वैभव, धनकी लालसा, अहमन्यता, भोगविलास बड़प्पन, झूँठ, कपट, दुराचार आदि दुर्गुणों को ही अपनी उन्नति मानकर वह अपने आपको इतना भूला हुआ है कि उसे ईश्वर का कोई भय ही नहीं है। वह एक प्रकार से ईश्वर की सत्ता को मानता ही नहीं, यदि उसे नास्तिक वाद का जालूम कहा जाय तो कोई हानि नहीं। कारण ईश्वर से डरने वाला, धर्मावलम्बी पुरुष इस पाप को कदापि नहीं देख सकता कि लाखों मनुष्यों का आहार केवल एक ही 'बड़ा' नामधारी पुरुष-रक्तशोषक खाता रहे और बाकी लाखों मनुष्य पेट की ज्वाला में जलते रहें। ईश्वरवादी तो सबको ईश्वरके पुत्र मानकर भाई की तरह बांटकर खाया व पहना करता है। आत्म उपमा ही उसके जीवनका सार तत्व हो जाता है। गीता छः बत्तीस में इस आत्म उपयोग पुरुष को ही योगी कहा है! जो इस आत्म उपमा से रहित होकर जीता है वह अहिंसा, सभ्यता, ईश्वर एवं मनुष्य जीवन का घातक कहलाने योग्य है। अतः हरेक अहिंसक, सभ्य, ईश्वरवादी, जनहितैषी मनुष्य का कर्तव्य है कि वह इस महात्मा रूपी पाप को संसार से मिटाने की प्रतिज्ञा करे। इस में ही विश्व का प्रेय और श्रेय छिपा हुआ है। यद्यपि इसके विरुद्ध आन्दोलन चालू है परन्तु वह नहीं के बराबर एवं निर्जीव है, वास्तव

में इसमें आतंकवाद के विष (Poison) से रहित शुद्ध क्रान्ति के जीवन को भरने की नितान्त आवश्यकता है।

वृद्ध—उनके महत्व की कमी व उनके अधिकार का दुरुपयोग, (वृद्ध शब्द का ही दुरुपयोग)

ॐ वृद्ध शब्द महाजन शब्द का पर्य्याय वाचक है। जैसा पहिले कह दिया गया है कि वृद्ध पुरुष केवल आयु ही से वृद्ध हों सो नहीं है क्योंकि आयु से वृद्ध होने पर भी यदि उनकी बुद्धि में अनुभव की छाप लगकर प्रौढ़ता नहीं आई है तो फिर कौनसा कारण हो सकता है कि जिसके द्वारा वह वृद्ध पुरुष पूजनीय हो ?

गुणेषु पूजा स्थानं न लिंगं न च वयः।

वास्तव में पूजा के योग्य वही है जो गुणवान है। न तो इसमें आयु का कारण है न लिंग भेद ही कोई कीमत रखता है। यदि यह बात सत्य है तो फिर क्या कारण है कि वृद्ध पुरुषों की इज्जत व उनके कथन का पालन तो स्वर्ग में ले जाने वाला और उसकी अवहेलना नर्क में लेजाने वाली मानी जाती है ? क्या कारण है कि उनकी आज्ञा का पालन करने वाला तो समाज की दृष्टि

में सपूत और पालन न करने वाला कपूत समझा जाता है? ये प्रश्न निरर्थक नहीं बल्कि गूढार्थ रखने वाले हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि यदि वहाँ रूढ़ीवाद का चश्मा लगाकर इन प्रश्नों पर दृष्टिपात किया जायगा तब तो इनका स्पष्टीकरण हो ही नहीं सकता और न इनका वास्तविक रूप ही आपको नजर आ सकता है; परन्तु यदि हम सदसद विवेक बुद्धि के सहारे इनको निष्पक्ष रूप से हल करें तो इनके स्पष्टीकरण सहज ही में हो सकेंगे।

उपरोक्त व्याख्या के अनुसार वृद्ध पुरुष वही है जो ज्ञान में वृद्ध हो। पूर्वकाल में मनुष्य ज्ञान उपार्जन कर अपने धर्म पर आरूढ़ रहना अपना प्रथम कर्त्तव्य समझते थे। यही कारण था कि समय के साथ २ उनका अनुभव भी उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त करता था और उसी अनुभव का उनकी सन्तान सदुपयोग करती थी। इसी ज्ञान-यज्ञ से फलीभूत अनुभव के कारण ही ज्ञानवृद्ध व वयोवृद्ध जीवन की समस्याओं के उपस्थित होने पर वह अकथनीय सलाह देते थे कि आज उनकी बातें इतिहास में अमिट स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं। यही कारण था कि वृद्ध पुरुषों का सर्वत्र मान व आदर था। धीरे २ ज्ञान प्राप्ति के साधन व इच्छा का ह्रास होने लगा और अन्त में वह समय आगया है

जब केवल इसी लिये कि अमुक व्यक्ति वृद्ध है (आयु से) उसका कहना मानना प्रत्येक प्राणी का कर्त्तव्य है, सिद्धान्त मान लिया गया है। यदि तुम सपूत कहलाना चाहते हो तो तुम्हें यह पूछने का हक नहीं है कि अमुक बात ठीक है या नहीं। उसे केवल इसीलिये सत्य मानलो कि तुम्हारे वृद्ध पक्ष ऐसा कहते हैं। उनसे भूल कर भी यह नहीं पूछा जा सकता कि वह ऐसा क्यों है ? और यदि किसी कपूत ने ऐसा साहस कर भी लिया तो उसको कपूत होने का सार्टिफिकट तो मिल ही जावेगा परन्तु उसके प्रश्न का उपयुक्त उत्तर तो यही होगा कि ऐसा सदा से होता आया है।

फल यही हुआ है कि आज के वृद्ध सज्जन अपनी उसी बपौती के अधिकार, मान मर्यादा के बल पर निस्संकोच रूढ़ीवाद की विजय पताका फहरा कर अपने बाप दादों का नाम अमर रखना चाहते हैं और उसी अधिकार के दुरुपयोग ही का यह फल है कि अनेक नवयुवक इच्छा न होते हुए भी रूढ़िवाद का सिकार होते हैं और न्याय अन्याय का कुछ भी विचार नहीं कर सकते। बल्कि अनेकों पर तो आरम्भ से ही ऐसे संस्कारों का इतना बुरा प्रभाव पड़ता है कि वे खुद ही रूढ़ीवाद के

सिकंजे में ऐसे फंस जाते हैं, उसके साँचे में ऐसे ढल जाते हैं कि उनको फिर कोई दूसरी शक्ल देना महान् कठिन हो जाता है। ऐसे नवयुवक-हृदयों पर कभी २ बड़ी तरस आ जाती है। ईश्वर की दया और समय के फेर से आज के नवयुवकों को यह पता लग गया है कि आज के वृद्ध अपने अधिकारों का दुरुपयोग ही कर रहे हैं और अपने ही हाथों अपनी संतान व अपनी समाज को पतन के गहरे खड्डे की ओर निस्संकोच ले जा रहे हैं। इन्ही वृद्ध कहलाने वालों की अधार्मिकता. रूढ़ी वादिता स्वार्थान्धता, अज्ञानता आदि जो वृद्धपन के इज्जत के पर्दे के पीछे छिपी हुई थीं वे अब शनैः २ प्रकाश में आने लगीं हैं और इसी कारण अपनी आज्ञा की अवहेलना देखकर वृद्ध पुरुष अब तिलमिला उठे हैं; अपनी सन्तान पर रोष व कोप की दृष्टी रखने लगे हैं और आज की सन्तान समाज की दृष्टी में केवल रूढ़ीवाद के सिद्धांत को न मानने के कारण ही कपूत, अभिमानी, मूर्ख, अधर्मी आदि विशेषणों से अलंकृत होने लगी है। यही सन्तोष की बात है और यही संकेत है कि अब वृद्ध पुरुषों की धींगा धींगी थोड़े ही दिन और चल सकेगी। अच्छा हो यदि वे अपनी उस पुरानी खोई हुई कमाई का पुनः ध्यान करें और आयु के चौथे भाग में प्रेम-धर्म, परोपकार,

ज्ञान, ईश्वर-भक्ति आदि की कमाई कर इहलोक में इज़्ज़त, पूजा व सुख के भोगी बनें और अन्त में अपना परलोक सुधारें। ऐसा करने पर समाज का बड़ा भारी उपकार होगा और वृद्ध शब्द का, जिसका आज इतना दुरुपयोग हो रहा है, मज़ाक उड़ाया जा रहा है, वही पहिले वाला मान व आदर होने लगेगा और जगत् का कल्याण होगा।

गुरुशब्द का दुरुपयोग

यद्यपि प्रिय पाठक गुरु शब्द का तत्व ऊपर पढ़ और समझ चुके हैं तथापि ॐ इतना और कह देना चाहता है कि गुरु शब्द इतना महत्वशाली, तात्विक, तथा आदर्श शब्द है कि जिसकी जोड़ का दूसरा शब्द ही शब्दकोष में नहीं मिल सकता है। ॐ तो इस शब्द को ईश्वरप्रदर्शक, प्रकाशवाहक (*Torch*) कहा करता है। परन्तु दुःख से लिखना पड़ता है कि जितना दुरुपयोग आज इस शब्द का हुआ है इतना सायद ही किसी अन्य वस्तु का हुआ हो। सच बात तो यह है कि आजकल यह शब्द केवल ढोंग, पाखण्ड, कुटिलता, धूर्तता आदि का द्योतक ही रह गया है।

> पाषण्डिनो विकर्मस्थान्वैडालव्रतिकाञ् शठान्।
> हैतुकान् वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥

पाखण्डी, बाहिर से साधु अन्दर से लुटेरा, वेद विरोधी कर्म में स्थित, बिलाव के सदृश प्रायः घात से जीने वाला, बदमाश, मूर्ख, दुराग्रही, हटीला, मिथ्याभिमानी व्यर्थ बिनामतलब बकनेवाला बगुलाभक्त–जो ध्यान से ही दूसरों की शिकार करता हो, ऐसे को बुद्धिमान पुरुष वाणी मात्र से भी आदर न देवें। उपरोक्त विशेषणों से युक्त पुरुष का आदर देने से जितनी हानि समाज की हो रही है उतनी हानि असली लुटेरे डाकुओं से भी कभी नहीं हो सकती है। ऐसे धूर्तों के विरुद्ध यदि कोई आन्दोलन भी किया जाता है तो यह धूर्त मोका पड़ने पर आन्दोलनकारी के प्राणों तक को भी ले लिया करते हैं। इन्हीं जुल्मों से बचने के लिये मनु भगवान ने कहा है— ॥ वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥

ऐसे धूर्तों से बचना हर एक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। ऐसे धूर्त न गुरु, न वृद्ध, न महाजन ही कहे जाने योग्य हैं। जितने पाप, दुराचार, अत्याचार भारतवर्ष में आज इस शब्द ने किये हैं उनको लिखने में गणेश और सरस्वती भी पनाह मांगते हैं। इस शब्द ने यदि कोई वस्तु संसार को सब से बड़ी और उत्तम दी है तो वह धार्मिक एवं साम्प्रदायी द्वेष है जिसने नीति, धर्म, राष्ट्र और

समाज के लिये भूखे सिंह एवं पागल कुत्ते का काम किया है। इसी ही भारतवर्ष में ८८ लाख भिख मंगों के डाकू दल को पैदा किया है जो भारत जैसे भूखे देश के अरबों रुपयों का दान रूप भीख के नाम से लूट कर हरामखोरी और दुर्व्यसनों में लगा रहा है। आज जो धन गुरु पन पर दिया जाता है उस धन में भारत के त्याग व वैराग्य को अज्ञान के स्मशान में जला कर त्याग धर्म को विषयों और फैशन का कुत्ता बना दिया है। धर्म की उस पवित्र उपासना को जो उपासना साक्षात् ईश्वर में मिला कर ईश्वर रूप बना दिया करती थी अधर्म और ढोंग का जामा पहना दिया है। इस धन से पालित मनुष्य सब तरह से बुरा होकर राष्ट्र, समाज, धर्म का घातक हो जाता है। वृद्ध शब्द के विवेचन में उपरोक्त कथनानुसार उसी पुरानी भक्ति, मानव मर्यादा के आधार पर इस कलयुगी 'गुरु' ने तो संसार भर में और विशेष कर भारत में वह पापाचार व अत्याचार, वे हत्याकाण्ड, स्त्रियों का अपहरण, उनकी मान मर्यादा व सतीत्व हरण चोरी, जुआ, गृह-कलह, आदि इतने अच्छे ढंग से सम्पादित किये हैं कि उनके कारनामे लिखना महान् कठिन कार्य है। यदि मैं ऐसा कहदूँ कि 'गुरु के कारनामे'

लिखने में दैवी शक्ति भी फली भूत हो सक्ती है या नहीं तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी। फिर भला इस छोटी सी पुस्तिका में उस पर कैसे प्रकाश डाला जा सकता है फिर भी अनेक रूप रूपाय इन गुरुओं का कुछ दर्शन तो आपको ॐ करावे ही गा।

गुरुओं के नमूने

भक्त गुरु—

ॐ यह देखिये एक भक्त-गुरु विकलता पूर्ण रोदन करता हुआ गद् २ कंठ से, करुणामयी वाणी से, अश्रु भरे नेत्रों से, युक्त हाथों से किसी को पकड़ने जैसी आकृति बनाकर कह रहा है कि 'जाओ २ मेरे प्राण के आधार जाओ तुम चले गये तो मुझे जिन्दा नहीं पा सकोगे" कह कर खाली हाथों पृथ्वी पर धड़ाम से पड़कर बेहोश सा हो जाता है। कुछ काल में व्याकुलता से उठकर हाथ फैला कर मतवाले की तरह आगे बढ़कर अपने आपको ही पकड़ कर खिल खिला कर हँसता हुआ कहता है "अब जाओ, कैसे जाओगे, देखूं तुम्हारा बल कितना है। मिलगये २ मेरे जीवन आधार (गंभीर भाषा में कहता है)

अब मन भर करूंगा तुम से प्यार" कह कर कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी दौड़ता है। ऐसे भक्तों की टोलियां बंगाल प्रांत में बहुत फिरा करती हैं जिनको नेड़ा नेड़ी कहा करते हैं। वृन्दावन बृज में भी ऐसे भक्त मिल जाया करते हैं।

वह भक्त कभी पकड़ता है, कभी पृथ्वी पर पड़कर फिर उठ जाता है इत्यादि भगवान् मिलन की ऐसी लीलायें को देखकर बुद्धिमानों के सिरताज भी निर्बुद्धि होकर उसके पैरों की धूल चाटने लगते हैं फिर चाहे वह अन्दर से बिल कुल खाली "हीरालाल गोईदका" ही क्यों न हो? ये तो हुई एक तरह की भक्ति की फैशन, भक्ति में ऐसे सैकड़ों ही तरीके हैं जिनको समझने में बुद्धिमानों की बुद्धि भी ठोस हो जाती है।

योगी गुरुः—

ॐ जरा योगी गुरु का भी चमत्कार देख लीजिये जो ईश्वर और प्रकृति का भी नाक काट रहा है। जिसने, पाखंड, ढोंग, धूर्तता से ही संसार को बेवकूफ बनाया है। जो भौतिकवाद के पोषणार्थ ईश्वर जैसी वस्तु त्याग कर सिद्धि के नारकीय गव्हर में खुद पड़कर अपने दलालों

को डाल रहा है। जिसकी नासाग्रदृष्टि के जाल में ही मात्र बुद्धिमान उलझ कर नत मस्तक हो रहे हैं। यह नासाग्र दृष्टि ही आधुनिक योग का वह बीज मंत्र है जिससे बड़े २ बुद्धिमान पुरुषों को बेवकूफ बनाकर अपने भ्रम फांस में फंसाया जाता है। सच बात तो यह है कि आज कल योग से बढ़ कर कोई भी जालसाजी दुनिया में नहीं है, जिसके द्वारा सहज ही में मनुष्य को अपना गुलाम बनाया जा सके। झूठ को निभाने की जितनी शक्ति योगी गुरु में है इतनी शक्ति तो शायद स्वयं झूठ के अधिष्ठाता देवता में भी नहीं होगी। वैसे ही ढोंगी गुरुओं की कृपादृष्टि से योग की सचाई मिट रही है। योग का सीधा सादा अर्थ है चित्तवृत्तियों को विषयों से हटा कर ईश्वरीय ज्ञान की अग्नि में होम कर देना, न कि उनको और अधिक चंचल बनाकर उनसे और अधिक विषयों का विष संग्रह करने में लग जाना। ऐसा करना योगीपना नहीं अपितु कपट मुनिपना है जिससे संसार को हानि के सिवाय लाभ कुछ है ही नहीं।

वेदान्ती गुरुः—

ॐ तीसरा और सबसे श्रेष्ठ गुरु ब्रह्मज्ञानी वेदान्ती है यह उस तत्व में रमण करने लगता है जो आवागमन

से अगोचर है, जिसमें जाकर मन, वाणी, प्राण का अस्तित्व ही नहीं रह जाता है। परन्तु दुःख से लिखना पड़ता है कि आधुनिक वेदान्तियों का तो बेड़ा ही गर्क हो गया है। वेदान्ती होते ही उनकी इन्द्रियों भ्रष्ट हो जाती हैं। वह भोगों को भोगने में विरोचन का भी नाक काटने लग जाते हैं। वह कहने लगते हैं कि 'भोगे युवती सन्यासी संगे, ताको लगे न रंचक अंगे'। "इन्द्रियों ही विषयों को भोगती हैं और इन्द्रियों ही विषयों का त्याग करती हैं। मैं तो इन से जुदा निर्विकार ब्रह्म हूँ। गुण ही गुण में वर्तते हैं। ऐसा मान कर मैं तो असंग हो गया हूँ (संगो ही न सज्जते) मुझे संग शोभा नहीं देता है। जो यह पुरुष है वह तो असंग है" इत्यादि कहतेहुए ये लोग सर्व भक्षी और सर्व भोगी हो जाते हैं। यहां तक कि जो आचार विचार कुछ प्रथम था भी वह भी छोड़ देते हैं।

सैद्धान्तिक दृष्टि से ये लोग ब्रह्मज्ञान से बिल्कुल ही शून्य होते हैं। ये लोग भौतिकवाद (देहात्मवाद) के कुत्ते-संसारी लोगों के करोड़ों रुपये छीन कर बड़े २ बिल्डिङ्ग बनाकर सब तरह से गुलच्छर्रे उड़ाते रहते हैं। इन विरोचनी (असुर) ज्ञानियों ने ही ब्रह्मज्ञान के

सात्विक त्याग में जीवन को वेश्या का रूप प्रधान कर या है। इस वेश्या रूपी भोगों के कुत्ते रूप ज्ञानियों के मकानात के ऊपर भी 'तत्वमसी' वाक्य लिखा रहता है जिससे इनका हृदय बिल्कुल अछूत होता है। इन उपरोक्त प्रधान गुरुओं के सिवाय भी हिन्दू धर्म में अन्य गुरु बहुतेरे हैं जैसे सनेही, मार्गी, पंथी, समाजी आदि। कहाँ तक गणना की जावे. इन्हीं नामधारी गुरुओं के हाथों में पड़ कर हिन्दू धर्म की ऐसी सत्यानाशी हुई है कि कुछ वर्णन नहीं हो सकता। हिन्दू समाज की धर्मान्धता का इस से बढ़ कर और क्या नमूना हो सकता है कि अनेक भ्रष्टाचारी गुरु अपनी शिष्य मण्डली को धर्म के नाम पर अपना वीर्य, मलमूत्र तक खिलाते सुने गये हैं, और उनकी अंधी भक्त मण्डली कभी उफ नहीं कर सकती। यही दल है भारत के उच्चतम महाजनों का नमूना! जिनके भ्रष्टता रूप पाप से भारतवर्ष का नैतिक, सामाजिक और राजनैतिक पतन इतना जोरों के साथ हो रहा है।

यह तो उस गुरु शब्द के पतन की बात है जो शुद्ध सनातन धर्म के नाम से कहा जाता है। परन्तु अन्य हिन्दु धर्मों के गुरु शब्द भी इस दुरुपयोग से नहीं बचे हैं। उदाहरणार्थ जैन धर्म को ही लीजिए।

इन धर्माचार्यों (गुरुओं) के पास न तो कोई जायदाद ही है न कोई सम्पत्ति ही। न इनको पूरे भोग भोगने की स्वतंत्रता है और न ये एक जगह पर रह ही सकते हैं। श्री पूज्य हो कर भी ये श्रावकों के ही अधिकार में रहा करते हैं अर्थात् ये श्रावकों की भावना के विरुद्ध स्वास तक भी नहीं ले सकते हैं। फिर आत्म स्वतंत्रता की तो बात ही क्यों कहें? इतना होते हुए भी ये लोग गुरुपन (श्री पूज्यपन) के लिये बुरी तरह से लड़ा करते हैं इन जैनाचार्यों के इस पदाधिकार के झगड़े ने जैन धर्म को बड़ी गहरी चोट पहुँचाई है। इनकी लड़ाई ने आज कल ऐसा भयङ्कर रूप धारण कर लिया है कि मनचले लोग जो पहले ब्राह्मणों की आपस की लड़ाई पर कहा करते थे कि 'ब्राह्मण ब्राह्मणं दृष्टवा स्वानवत् घुर घुरायते' वे ही अब कहने लगे हैं कि 'जैने जैन दृष्टवा आदि' जैन धर्म जैसा पुराना धर्म भी आज इन फूट देवी के उपासक जैनाचार्यों की कृपा से अधोगति के गर्त में जा रहा है। जैन समाज में फूट और विद्वेष की अग्नि भभकती ही जा रही है जिसको सभी जैन धर्मी अब स्वयं अनुभव करने लगे हैं।
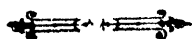
अन्य धर्मावलम्बी गुरुः—

वैसे तो हिन्दू धर्म के नाते अन्य धर्मों पर आक्षेप करना सिद्धान्त के प्रतिकूल है। परन्तु जो कुछ भी शब्द यहां उनके प्रति लिखे जा रहे हैं उनमें द्वेष भाव लेश मात्र भी नहीं है और जिस प्रकार निजी धर्म के प्रतिकूल भी जो बात तथ्य व सत्य है उसे कहने में किसी प्रकार की आना कानी नहीं है उसी प्रकार व उसी शुद्ध भाव से केवल सिद्धान्त के नाते अन्य धर्मों के संबंध में भी हमें कुछ कहना पड़ता है वह भी केवल इसी लिये कि उनकी खराबियें भी उन धर्मावलम्बियों की दृष्टि में आने से शायद वे कुछ अपने जीवन में सुधार कर सकें।

इतिहास को उठाकर यदि आप देखेंगे तो पता लगेगा कि कुछ धर्म तो जन्म ही से खूनी पोशाक पहन कर ही अवतीर्ण हुए हैं। मुमकिन हो कि समाज व देश को उस समय अपने हित की रक्षा के लिये लड़ाई झगड़े की जरूरत हुई हो परन्तु वह सामयिक आवश्यकता धर्म के नाम पर सदा के लिये और समष्टी रूप से धार्मिक सिद्धान्त के रूप में निश्चित नहीं हो सक्ती। वैसे आज तक इन धर्मों के नाम पर लाखों नहीं करोड़ों ही मनुष्यों का जीवन मृत्यु के घाट पर उतारा गया है मगर शुद्ध

भाव से यदि पूछा जाय तो क्या किसी भी हालत में कोई भी साधारण ज्ञान रखने वाला इसी धर्म का अनुयायी जिसे आदम जात से प्रेम है कभी यह बात स्वीकार करेगा कि धर्म के नाम पर दूसरे इन्सान की जान लेलेना बुरा नहीं है ? हरगिज नहीं। अभी तक भी जो खून खराबी से यह धर्म रञ्जित समझा जाता है उसका कारण इसी धर्म का मूल तत्व नहीं अपितु उसके स्वार्थ परायण धर्मान्धता के शिकार धर्म गुरु कहलाने वाले ही हो सक्ते हैं। इन्हीं धर्म गुरुओं की बेढंगी चाल से बिचारे हजारों मनुष्यों का एक दूसरे के हाथों हनन हो जाता है। क्या कोई भी सच्चा धर्मानुयायी इसे वाजिब कहेगा।

यही हाल सभ्यता के अवतार ईशाई धर्म का है। इस धर्म का इतिहास भी इतना ही रक्त-रंजित है कि उसका विवरण न लिखना ही ठीक है। भला जिसने अपने धर्म प्रवर्तक को ही शूली पर चढ़ा कर ही संसार में प्रवेश किया है उसके सम्बन्ध में रक्तपात का क्या भय हो सक्ता है। फल स्वरूप यूरोप में इसी धर्म के नाम पर जो २ काण्ड हुए हैं वह विद्वान् लोग सब जानते हैं। इसी प्रकार अनेकानेक हत्याकाण्ड, पाप लीलाएँ, जघन्य कृत्य अनेक धर्मों के नाम पर इस संसार में हुए हैं और

वे सब हुए हैं इन्हीं धर्म गुरुओं के नाम पर- इन्हीं महाजनों के नाम पर जो अपनी अभिमान स्वरूपिणी गन्दगी के आगे क्या कर्त्तव्य है और क्या अकर्त्तव्य यह कभी सोच ही नहीं सक्ते थे।

जब तक विश्व में इस त्रिविध पाप रूप महाजन के मिटाने के साधन उपलब्ध न होंगे, तब तक विषमता, विद्वेष, अधर्म, अनिति अनाचार, अत्याचार, असङ्गठन, हुल्लड़, टोली, स्वार्थ साधना और इनके फलस्वरूप, कलह, अशान्ति, मारकाट, कभी भी शान्त नहीं हो सक्ते, और न हम किसी हालत में भी अध्यात्मवाद के सुखमय झूले में, समतावाद के आनंदप्रद वायु का सेवन करते हुए झूल सक्ते हैं।

अतः इसका सार तत्व यही निकलता है कि हरेक समाजहितेच्छु धर्म के तत्ववेत्ता, ईश्वर पर भरोसा करने वाले मनुष्य का चाहे वह मुशलमान हो, चाहे ईशाई, चाहे सनातनी, चाहे समाजी, चाहे कुंडा पंथी, चाहे कबीर पंथी, चाहे रामसनेही, चाहे लक्ष्मण सनेही, चाहे वैष्णव, चाहे शैव, चाहे शाक्त और चाहे आक्त हो उसका तो परम कर्त्तव्य यही हो जाता है कि वह ऐसे भयङ्कर गुरु-महाजन के विरुद्ध भीष्म प्रतिज्ञा करें और भीषण

क्रान्ति उत्पन्न करे जिससे इन धूर्त गुरुओं के माया जाल से भाले भाले अबोध स्त्री पुरुष अपने आपको बचाकर अपना जीवन सुखमय बना सकें।

इस साधन (क्रान्ति) के विना विश्व से दुखों का नाश और महाजन शब्द का संशोधन नहीं हो सकता है। जब २ भी ऐसे धूर्त महाजन गुरुओं की भारत में उत्पत्ति हुई है तब २ ही इनके नाशनार्थ भयङ्कर क्रान्ति भी होती रही है। सर्व प्रथम क्रान्ति का उल्लेख इन्द्र और प्रतर्दन के संवाद रूप में आया है। इन्द्र, प्रतर्दन से कहते हैं कि हे प्रतर्दन! मैंने साठ हजार अरुण मुख (भोगों को भोग कर लाल चिट बने हुए) सन्यासियों को मारकर शृगाल और कुत्तों को खिला दिया जिससे मेरा एक रोम भी पाप से नहीं विगड़ा। ऐसी ही एक दो कथाएँ आत्म-पुराण में भी आती हैं जिनमें ढोंगी गुरुओं को शृगाल और कुत्तों की तरह से मारकर भी मारने वाला निष्पाप ही रहा है। महाभारत में ऐसी ही कथाएँ आती हैं जिनमें ढोंगी गुरुओं का त्याग और बध तक करदेना बताया गया है देखिये श्लोकः—

गुरुरप्ये वलिपतस्य कार्य अकार्यमजानतः।
उतपत्य पतीपन्नस्य से न्यायं भवति शाशनः॥

जो गुरु ढोंग में आकर धर्माधर्म–कर्माकर्म का विचार छोड़कर मनमुखी रास्ते से चलने लगें तो राजा और प्रजा का धर्म है कि वह उसका शासन अवश्य करें। यह श्लोक महाभारत में चार जगह आया है। बाल्मिकी रामायण में भी आया है। चौथी जगह में (दंडो भौतिसास्वतः) पाठ है जिसका अर्थ दंड देना ही कल्याणप्रद या ठीक है। ऐसे ही शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर भीष्म पितामह ने परशुराम से, अर्जुन ने द्रोणाचार्य से एवं महादेव से युद्ध किया था। भक्त प्रहलाद ने गुरु अवज्ञा करके ही पिता के विरुद्ध क्रान्ति उत्पन्न की थी। शांति पर्व में भीष्मजी भगवान से कहते हैं किः—

समयत्यागिनो लुब्धान् गुरुनपि च केशव ।
निहन्ति समरे पापान् क्षत्रिय स हि धर्मवित् ॥

हे केशव! समयके त्यागनेवाले लोभी गुरुको जो लोभ के लिये पाप में प्रवृत होता है उसे मारडालने वाला क्षत्रिय ही सच्चे धर्म का ज्ञाता हुआ करता है। मनु ने भी कहा है कि :—

पिताचार्य्यः सुहृन् माता भार्य्या पुत्रः पुरोहिताः ।
नादण्डयोनाम राज्ञाऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥

पिता माता, पुत्र, आचार्य, पुरोहित तथा भार्यादि चाहे कोई भी क्यों न हो उन सब को स्वधर्म छोड़ देने पर राजा दण्ड अवश्य देवें। विदुरजीने भी कहा है कि—

आप्रवक्त माचार्य्यं त्यागोही विधीयते।

जो आचार्य हमें सत्य वक्तव्य नहीं दे सके उसका त्याग देना ही विधान है। ऐसे गुरुओं के निवारणार्थ ही भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था क्योंकि उस समय का शुद्ध वैदिक धर्म ढोंगी गुरुओं की कृपा से वाममार्ग रूप पाप में बदल गया था। आगे जब यह बुद्ध धर्म भी ढोंगी गुरुओं का ढकोसला बन कर धर्म के नाम पर पाप करने लगा तब भगवान शङ्कराचार्य ने इनके नाशार्थ जन्म लिया था। महात्मा तुलसीदासजी भी ऐसे धूर्त गुरुओं के विरुद्ध ही थे। देखो वे यह क्या कहते हैं कि—

'हरे शिष्यधन शोषन करही, सो गुरु घोर नरक में परही'

आजकल तो ऐसे ही नारकीय गुरुओं की भरमार है। सच्चे सद्गुरु मिलना कठिन ही नहीं बल्कि दुस्तर हो गया है। इसी बात को हमारे बाबा महादेव ने देवी पार्वती से कहा है कि—

गुरुवो बहव: सन्ति शिष्य वित्तापहारका: ।
दुर्लभ: स गुरुर्देव: शिष्य सन्ताप हारक: ॥

हे पार्वती ! शिष्य धन को चुराने वाले गुरु तो बहुत मिलेंगे परन्तु शिष्य के त्रिविध ताप को हरने वाले गुरु दुर्लभ हैं । महाराष्ट्र के मुकुटमणि ज्ञानेश्वरजी ने चौदह सौ वर्ष के सिद्ध योगी, ईश्वर विमुख, चांग देव को सीधे रास्ते पर लाकर जिज्ञासुओं को बतादिया कि भोग के लिये किया हुआ योग भी मल मूत्र की उपासना है अतः हमें ऐसे सिद्ध महाजन गुरुओं का तीव्रतर विरोध करके भोली भाली जनता को और उसके परिश्रम से कमाये हुए धन को दुरुपयोग में लगने से बचाना चाहिये । इसके लिये क्रांति पैदा करें, और इनके काम में आने वाले धन जायदाद, सम्पत्ति को सदुपयोग में लगावें और इनके पोषक पूँजीपति दाताओं को समझावें क्योंकि ये पापी पूँजीपति ही इन पाप के पुतलों को अपने स्वर्ग, धन या कीर्ति के लिये पोषण करते हैं ! येही इस विषवृक्ष रूप गुरु के सींचने वाले हैं । इन दोनों का अभाव ही सुख, शांति, धर्म और नीति का भाव (स्थापना) है । अतः इन्हें मिटाना ही ईश्वरीय तत्व के प्रचार का सार है ।

एक लेखक ने लिखा है कि अकेले नाथद्वारे में जितनी संपत्ति खर्च होरही है उससे कितने ही विश्वविद्यालय भली भांति चल सकते हैं। भारतवर्ष में नाथद्वारे से भी संपत्ति शाली देवस्थान पड़े हुए हैं। ऐसे मामूली २ स्थानों में भी लाख डेढ़ लाख संपत्ति का मिलजाना स्वाभाविक सी बात है। महाराष्ट्र के ओशमनो बाबा के पास पूना चोरा विध्वंसक संघ के प्रयत्न से १ लाख अट्ठावन हजार रुपये सरकारी गवाही द्वारा बेङ्क में सिद्ध हुए हैं। इन संपत्तियों का अधिक भाग अधर्म व दुर्व्यसनों में ही व्यय हुआ करता है इसमें किसी को सन्देह करने की आवश्यकता ही नहीं।

धर्म का दुरुपयोगः—

ॐ अन्यत्र कहा गया है कि महाजन और धर्म एक ही तत्व के दो नाम हैं अतः एक का दुरुपयोग ही दूसरे का दुरुपयोग है और एक का सदुपयोग ही दूसरे का सदुपयोग है। इन उपरोक्त महाजनों ने धर्म को नष्ट भ्रष्ट किया है। इनकी दृष्टि में सच्चा धर्म उतना ही है जिससे इनको मान, बड़ाई और भोग मिलता है फिर चाहे वह बड़े से भी बड़ा पाप ही क्यों न हो। वह धर्म इनकी धूर्त नीति है। इस धूर्त नीति धर्म ने ही विश्व में मात्र

बुराइयों को जन्म दिया है। यही अशान्ति का प्रचारक हिंसा का जन्मदाता, हत्याकांडों का केन्द्र, पाप का खजाना और विद्वेष रूप अग्नि की भभकती हुई भट्टी है। स्वार्थ ही इसका जीवन-तत्व और विषमता ही इसका बीज है। इसके कच्चे चिट्ठे को बनाकर जनता के सम्मुख रखदेना हो अपने को विपत्तियों के हवाले कर देना है। चाहे कुछ भी क्यों न हो वर्तमान समय में धर्म के पूर्वोक्त तीनों महाजनों का त्रिदोष हो चुका है जिससे धार्मिक जीवन बहुत ही खतरनाक और तुच्छ होगया है। इस त्रिदोष से धर्म को बचाने वाला ही सच्चा महाजन और इस त्रिदोष से बचा हुआ धर्म ही सच्चा धर्म है। इस धर्म के त्रिदोष को मिटाने वाले पुरुषों के मार्ग पर चलना ही महाजन के मार्ग पर चलना और इस त्रिदोष मुक्त सिद्धान्त को मानना ही सच्चे धर्म का सैद्धान्तिक तत्व है। इस धर्म के स्थापनार्थ ही भगवान् अपनी कलाओं को भर कर समय २ पर किसी प्राणी को विश्व में भेजा करते हैं। इस तत्व को समझना ही महाजन एवं धर्म के तत्व को समझ लेना है।
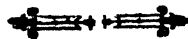
उपसंहार:—

ॐ दुर्भाग्य से विश्व की रचना ही विवादास्पद हुई है अतः इसका (विश्वका) हर एक तत्त्व विवाद एवं संशय से भरा हुआ है। देखिये कहीं तो इसका प्रारम्भ सत्य से कहा है और कहीं असत्य से कह दिया है! जैसे—

सदेव सोम्यमग्रासीन् तथा असदेव सोम्यमग्रासीन्।

हे सोम्य यह पहिले सत्य था तथा हे सोम्य यह पहिले असत्य था। जब इसका प्रारम्भ ही संशय और विवाद से ग्रसित है तो फिर इसके बीच के जञ्जाल (जिसमें अब हम वर्तमान हैं) को समझना कितनी कठिनता को पार करना है। इस बात को कोई भी बुद्धिमान पुरुष समझ सकता है क्योंकि वर्तमान का संसार विवाद और संशय के सिवाय और कुछ ही नहीं है।

किसी एक ही बात को कोई पुरुष पुण्य मानता है तो दूसरा उसको पाप मानता है। उदाहरणार्थ स्त्री के विधवा होने को ही ले लीजिये। विषय-निवृत्ति और संयम की दृष्टि से यह संन्यास की कोटी का मुक्तिप्रद महान पुण्य है; परन्तु विषयी संसार की दृष्टि में विधवा

होना सब से परले दर्जे का महान् पाप है। इत्यादि किसी भी बात को देखिये, यहां की सभी बातें आपको संशय और विवाद में लिपटी हुई मिलेंगी। वस्तुतः संसार का स्वरूप ही संशय और विवाद है।

अतः जो पुरुष इस संशय और विवाद रूप संसार के जञ्जाल से अपने को निकाल कर जनता को पार होने का ठीक सही मार्ग बताने वाला होता है उस पुरुष का नाम ही महाजन, गीता की भाषा में श्रेष्ठ, कहा गया है। बस इस महाजन पुरुष का तत्व ही इस निबन्ध में बताया गया है इसके निर्धारित किये मार्ग पर चलना ही महाजनों के मार्ग पर चलना है इसी बात को बताने के लिये ही यह निबन्ध लिखा गया है।

इस निबन्ध में जैसा महाजन बताया गया है वह बुराइयों की अन्त्येष्टी और श्रेष्ठता का सजीव स्मारक है। इसमें किसी आयु आदि को महत्व न देकर मनुष्य की श्रेष्ठता को ही मनुष्य की महानता का कारण बताया गया है।

ॐ यद्यपि यह लेख समालोचनात्मक है परन्तु यह समालोचना वैसी ही है जैसे कि हीरे को हीरे की खान

से निकाल ने के लिये कचरे को हटाने की क्रिया, या उसे खराद पर छील कर उसकी चमक और कीमत बढ़ाने की क्रिया। जिस प्रकार बिना कचरा साफ हुए, बिना खराद पर चढ़े, बिना छिले हीरे की बुराईयें दूर न होकर उसका वास्तविक मूल्य संसार की दृष्टि में नहीं आ सक्ता उसी प्रकार मनुष्य के व्यक्तित्व की कीमत भी तब तक विश्व की दृष्टि में नहीं आ सक्ती जब तक कि वह बुराईयों से परे होकर महानता, श्रेष्ठता, व सभ्यता को प्राप्त नहीं कर लेता। मनुष्य रूपी हीरे के लिये भी अपनी मनुष्यत्व रूपी चमक प्राप्त करने के लिये कितने ही कष्टों को झेल कर अपने कूड़े करकट को दूर फैंकना ही होगा। इसी उद्देश्य से मनुष्य को इस कठिन कार्य करने में सहायता देने के अर्थ ही यह समालोचनात्मक कहिये अथवा आलोचनात्मक निबन्ध लिखा गया है और इसमें किसी भी धर्म, धर्म-गुरु, वृद्ध अथवा महाजन के प्रति जान बूझ कर निन्दा व द्वेष के भाव प्रदर्शित करना लेखक की बुद्धि के परे की बात रही है।

ॐ जिस समय मनुष्य अपनी महानता और श्रेष्ठता पर से बुराई तथा स्वार्थपरता का कचरा हटा कर अपने को संयम, परमार्थ, तत्परता रूप खराद पर चमकीला

और पवित्र बना देता है उस समय ही वह चाहे किसी भी आयु में क्यों न हो वह महाजन, श्रेष्ठ विश्व, राष्ट्र और समाज का अगुआ, गुरु नेता, आचार्य और बड़ा आदमी बन सक्ता है और बन जाता है।

ॐ इस महाजन की दिनचर्य्या और कार्यक्रम का नाम ही सच्चे धर्म का स्वरूप है क्योंकि इसकी सभ्यता दिन-चर्य्या और कार्यक्रम राग द्वेष के विष से रहित परमपवित्र धार्मिक हुआ करती है। सिद्धान्त से राग द्वेष से रहित ही धर्म्म का सत्य स्वरूप है। जो एक संप्रदाय के लाभार्थ दूसरे संप्रदाय को कष्ट देना या मिटाना चाहता है वह धर्म नहीं अपितु राष्ट्र और समाज के लिये एक भयानक विष (पोईजन) या विश्वशांति के लिये भयानक आग है। अपने पन की रक्षा के लिये तो विष (पोईजन) भी धर्म ही है। जो मनुष्य अपने पन की रक्षार्थ ही जीता है वह मनुष्य नहीं अपितु एक अधर्म, द्वेष तथा मनुष्य-संहार की 'सुहावनी' मूर्ति है जो धर्म, विश्व में अधर्म, द्वेष, कलह फैलाता है वह धर्म्म नहीं अपितु एक विश्व विनाशक प्रचण्ड भभकता हुआ अग्नि कुण्ड है। अस्तु जिसका दिनचर्य्या, सभ्यता कार्य्यक्रम अपनेपन के लिये नहीं अपितु विश्व के लिये है वे एकसा ग्राह्य व एकसा लाभ

प्रद होकर ईश्वर तक पहुँचाने लायक हो जाया करते हैं वही सच्चा धर्मात्मा महाजन, श्रेष्ठ, गुरु, आचार्य्य और बड़ा आदमी हो जाता है। उसकी दिनचर्य्या, सभ्यता और कार्यक्रम ही सच्चा धर्म कहा जाता है।

फिर चाहे वह किसी भी आयु, जाति, संप्रदाय तथा देश का क्यों न हो? थोड़े में जिसका ध्येय विश्वउद्धार निर्दोष, महान्, श्रेष्ठ हो वही सच्चा महाजन है और जिसकी दिनचर्या, सभ्यता, कार्यक्रम, अन्तःकरण शुद्धिद्वारा ईश्वर में मिलाने वाला हो वही धर्म है वही महाजन औ महाजनों के मार्ग का सार स्वरूप है।